

लोक—जीवन स्वरूप, तत्व एवं विविध पक्ष

*डॉ. सुरेश सिंह राठौड़

साहित्य मानव जीवन का चित्र एवं उसकी व्याख्या है। मानव—जीवन के दो चरण हैं, एक तो सभ्यता के विकास से पूर्व का आदिम, साधारण एवं स्वाभाविक जीवन तथा दूसरा सभ्यता के विकास के बाद का वैज्ञानिक जीवन। इसी साधारण और स्वाभाविक जीवन को लोक—जीवन तथा वैज्ञानिक जीवन को शिष्ट अथवा कृत्रिम जीवन भी कह सकते हैं। शिष्ट अथवा कृत्रिम जीवन के धीरे—धीरे एक रस हो जाने के कारण कथाकार अपनी कृति में नवीनता लाने के लिए लोक—जीवन की ओर मुड़ता है। 'लोक' शब्द के अंतर्गत आदिम जातियों, ग्रामीण लोगों तथा साधारण जनो के जीवन का अथवा उनके जीवन की विशेषताओं का समाहार किया जाता है। लोक संबंधी धारणा 'नृतत्व' शास्त्र से ग्रहण की गई है। "मानवेतिहास की तरह 'लोक' शब्द की प्राचीनता असंदिग्ध है। वेदों, उपनिषदों, मनुस्मृति तथा भरतमुनि के नाट्य—शास्त्र में 'लोक' शब्द का विभिन्न अर्थों में प्रयोग मिलता है। संस्कृत के 'लोक' (दर्शन)+घञ् प्रत्यय से निष्पन्न 'लोक' शब्द का अर्थ है— 'देखने वाला'। इस अर्थ के अनुसार समस्त जनसमुदाय 'लोक' की परिधि में आ जाता है। शब्दकोशों के अनुसार 'लोक' शब्द भू—लोक, स्वर्ग लोक, पाताल—लोक अर्थात् चौदह लोकों तथा मानव जाति का ज्ञापक है।¹ ऋग्वेद में प्रयुक्त 'देहिलोकम्' के अनुसार 'लोक' शब्द का वाचक है, परंतु साधारण 'जनसमुदाय' के अर्थ में भी लोक शब्द का व्यवहार किया गया है— नाभ्यांऽआसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिष्टः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्।² भारतीय साहित्य परम्परा में 'लोक' शब्द शास्त्रेतर ज्ञान के लिए प्रयुक्त किया गया है, जो कि अंग्रेजी के 'फोक' 'थ्वज़' शब्द का पर्याय है। FOLK शब्द ANGLO SAXON FOLE का विकसित रूप है, जो कि DUCH (डच) तथा GERMAN भाषा में VOLK रूप में प्रचलित है। 'लोक' के आधिकारिक अध्येता डॉ. सत्येन्द्र 'लोक' को अभिजात्य संस्कारों से हीन मानते हुए कहते हैं— "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।"³ डॉ. सत्येन्द्र जब 'लोक' को पाण्डित्य या चेतना शून्य मानने की बात कहते हैं, उसके पीछे उनका मन्तव्य यह हो सकता है कि वह शिक्षा व सभ्यता से पूर्णतया जुड़ा हुआ नहीं है अर्थात् वे जन के भोलेपन की बात करते हैं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार — "लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। 'लोक' ही राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक के कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए 'लोक' सर्वोच्च प्रजापति है।"⁴ इस प्रकार डॉ. अग्रवाल 'लोक' में ही अपना सब कुछ निहित मानते हैं और यह सत्य भी है, क्योंकि 'लोक' ही मानवता की कसौटी है। हम लोक को मात्र ग्रामीण परिवेश तक ही सीमित नहीं रख सकते क्योंकि 'लोक' तो हमारी सांस्कृतिक अस्मिता को धारण करने वाला है। इसी बात को रेखांकित करते हुए मूर्धन्य समालोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं— 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई समूची जनता है, जिसमें व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।⁵

अनेक विद्वानों ने 'लोक' शब्द से तात्पर्य उन लोगों से लिया है जो विशिष्ट संस्कृति शासक वर्ग की विचारधारा तथा लिखित प्रमाण वाली जातियों से अप्रभावित रहते हैं। ऐसे लोग किसी सभ्य राष्ट्र में मुख्यतः सामान्य कार्यकर्ता हुआ करते हैं। विलियम टॉमस ने भी 'लोक' शब्द को असंस्कृत वर्ग से जोड़ा। इस प्रकार 'लोक' की वार्ता को सभ्य समाजों में उपलब्ध पिछड़े वर्ग की संस्कृति मानने की प्रवृत्ति बनी रही तथा 'लोक' शब्द को आदिम जातियों के साथ जोड़ दिया गया। पाश्चात्य परंपरा में भी 'लोक' को पिछड़े व संस्कारहीन समाज से ही जोड़ने की परंपरा रही है। सन् 1953 में प्रकाशित 'इनसाक्लोपीडिया ब्रिटैनिका' में 'फोक' शब्द का अर्थ मुख्यतः ग्रामीण जनसमुदाय ही किया गया है, जिसमें कृषक इत्यादि आदिवासी सम्मिलित हैं। अंग्रेज विद्वान फिलिप्स बार्कर के मतानुसार किसी आदिम समाज में उनके सभी सदस्य लोक हुआ करते हैं। विस्तृत अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किसी सभ्य राष्ट्र की संपूर्ण जनसंख्या के लिए किया जा सकता है। किन्तु साधारण व्यवहार में पश्चिमी प्रणाली के लिए इसका अर्थ संकुचित कर देते हैं। तब इसमें केवल वही लोग माने जायेंगे जो नागरिक संस्कृति तथा विधिवत् शिक्षा के प्रभाव से परे हों, जो गाँवों में तथा आसपास निवास करने वाले निरक्षर या बहुत कम पढ़े—लिखे लोग हैं। इस प्रकार लोक शब्द का अर्थ विकसित होता गया। पहले इसमें किसी समाज अथवा संस्कृति के पिछड़े हुए वर्गों से तात्पर्य लिया गया, फिर आदिम जातियों के साथ उसका संबंध स्थापित किया गया। तदुपरान्त कृषक, जनसमुदाय अथवा ग्रामीण जनसमुदाय में उसे प्रयुक्त किया गया। आज 'लोक' शब्द में उन सभी मानव समूहों का बोध

कराया जाता है, जो नगरों अथवा ग्रामीण जातियों में कहीं भी रहते हों।⁶ कैलीफोर्निया के प्रो. एलेन इंडेस के अनुसार “लोक शब्द मनुष्यों के किसी भी ऐसे समूह का द्योतक हो सकता है, जिसमें समानता का कम से कम कोई एक आधार हो। वह समान आधार उसका कोई एक व्यवसाय हो सकता है, किन्तु अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उस समूह की अपनी निजी परम्पराएँ हों।⁷ भारतीय विद्वानों ने सभ्यता को आधार बनाकर ‘लोक’ को परिभाषित किया है। डॉ. कुंज बिहारीदास ने अपनी पुस्तक ‘ए स्टडी ऑफ ओरिजनल फॉकलोर’ में ‘लोक’ शब्द के अंतर्गत प्रायः इन लोगों का समावेश किया है, जो सभ्य समाजों के प्रभावों से बाहर रहते हुए आज भी आदिम अवस्थाओं में जीवन बिता रहे हैं। कुछ विद्वानों ने ‘लोक’ शब्द के अस्तित्व को वैदिक काल तक खोज निकाला है और तभी से ‘लोके वेदे च’ के सूत्र को पकड़ कर विशिष्टजन एवं सामान्य जन की परंपराओं का उल्लेख किया है, लेकिन यह ‘लोक’ शब्द अपने वर्तमान अर्थ की परंपरा से भिन्न है। ‘लोक’ शब्द की विशेष स्थिति को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने ‘लोक समाज का अध्ययन’, ‘लोक-जीवन का अनुसंधान’ और ‘लोक-संस्कृति’ नामक इसके समकालीन शब्द गढ़े हैं। ये सभी शब्द ‘लोक’ शब्द के समानार्थी हैं।

‘लोक समाज’ (फोक सोसायटी) की पारिभाषिक कल्पना प्रसिद्ध ‘नृत्य’ शास्त्री राबर्ट रेडफील्ड ने प्रस्तुत की। लोक समाज द्वारा आदिम जातियों से इतर सभी प्रकार के मानव समूहों का बोध होता है। रेडफील्ड ने ऐसे लोक-समाज की निम्न विशेषताएँ बतायी हैं— आकार की लघुता, एकान्तिकता, आत्म निर्भरता, जातीय आचार-विचारों में समरूपता, उसके निर्माण तन्तुओं का अन्योन्याश्रित संबंध, वैयक्तिक संबंधों की निकटता, सरल तकनीक विधान, श्रम का विभाजन कम से कम होना, परिवर्तन की धीमी गति, जीवन प्रणाली की एक सूत्रता और रीति-रिवाजों में बद्ध मानव स्वभाव।⁸ लोक-जीवन का अनुसंधान (फोक लाइफ रिसर्च) की धारणा का उल्लेख करते हुए श्री त्रिलोचन पाण्डेय, नार्वे, स्वीडन की धारणा का उल्लेख करते हुए लिखते हैं— “लोक जीवन पर ध्यान केन्द्रित किये बिना तत्संबंधी विवेचन में प्रगति नहीं हो सकती। इस प्रकार के अध्ययन में संपूर्ण लोक संस्कृति का अध्ययन किया जाता है। इसका संबंध लोक-जीवन पद्धति के अनेक क्रियाकलापों से है, जैसे— लोक-मनोविज्ञान, लोक मनोवृत्ति, लौकिक-परिवेश, लोक-आचरण आदि। इस प्रकार के अध्ययन में स्थानीय इतिहास, स्थानीय साहित्य, बोलचाल, क्षेत्रीय कार्य आदि से संबद्ध विद्वान लाभान्वित हो सकते हैं। इससे लोक-जीवन के अभी तक उपेक्षित पक्षों की ओर ध्यान जा सकता है। यह अध्ययन लोककला दस्तकारी तथा शिल्प आदि विषयों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है।⁹ इस प्रकार लोक-जीवन में उन सभी पक्षों पर ध्यान दिया जाता है, जिनमें कि मनुष्य रहता आया है, परिवेश, कलाएँ, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन तथा दैनन्दिन आचारों-विचारों का अध्ययन लोक-जीवन में सम्मिलित होता है। इसी बात को रेखांकित करते हुए जॉन-मिश कहते हैं कि लोकवार्ता के अंतर्गत वे सब प्राचीन लोक-विश्वास, रीति-रिवाज और परम्पराएँ सम्मिलित हैं, जो आज तक सभ्य समाजों के अल्प-शिक्षित वर्गों में अवशिष्ट हैं। परी कथाएँ धर्मगाथाएँ, अवदान, लोक-विश्वास उत्सव, प्रथाएँ, पारंपरिक खेल-कूद, लोक-गीत, लोक-सुभाषित कलाएँ, शिल्प, लोक, नृत्य आदि इसके अंग हैं।

आधुनिक युग के समालोचक रमेश कुंतल मेघ ‘लोक’ व जन के भेद को रेखांकित करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, जब वे कहते हैं— “लोक का तात्पर्य जन है, जनता की समग्रता है अथवा पिछड़े हुए मूर्ख और असभ्य जनसमुदाय का समाज है। लोक जनसमुदाय का वह भाग है, किंवा स्वयं जनसमुदाय है जो नागरिक संस्कृति (विकसित ऐतिहासिक विभाजन) से किंचित दूर होगा।” इस प्रकार आरंभ में जब ‘लोक’ शब्द का अर्थ असाक्षर, असंस्कृत लोगों से किया गया तो उसका मूलाधार सामाजिकता थी फिर उसे जब आदिम समाजों के साथ जोड़ा गया तो उसका मूलाधार जातीय था। जब उसे कृषक समाजों अथवा ग्राम समाजों के साथ संयुक्त किया गया तो उसका मूलाधार भौगोलिक बन गया। अतः किसी न किसी रूप में हम सब लोक से संबंधित किये जा सकते हैं, क्योंकि हम सब परम्परा विहीन और पूर्वजों द्वारा प्रेषित सांस्कृतिक ज्ञान, रीति-रिवाज से हीन नहीं हैं।

निष्कर्षतः ‘लोक’ शब्द का अर्थ है— सामान्य जन समूह जिसके किसी भी भू-भाग पर रहने वाले वे समस्त लोक समाहित हैं, जो नागरिक सभ्यता, शिक्षा, बाह्य सजावट तथा औपचारिकताओं से दूर अपनी परंपरागत आदिम मनोवृत्तियों से जुड़े हुए प्रकृति की गोद में अत्यधिक सादा, सरल, स्वच्छन्द एवं स्वाभाविक जीवन जी रहे हैं। इसी लोक के धार्मिक विश्वास, उत्सव, अनुष्ठान एवं उसके विभिन्न क्रियाकलाप लोक संस्कृति का निर्माण करते हैं। मनुष्य समाज के रहन-सहन, खानपान, वेशभूषा, दैनन्दिन आचार-विचार तथा प्रथाओं में किसी प्रकार का बाह्य आडम्बर नहीं होता, अपितु यह जन अपना स्वाभाविक जीवन व्यतीत करता है। ‘लोक’ वस्तुतः हमारी मूल सांस्कृतिक अस्मिता को बनाये रखने वाला ऐसा निर्मल दर्पण है, जिसमें नगर और ग्रामीण दोनों ही अपनी संस्कृति की प्रतिछवि देखते हैं। लोक-जीवन से हमने जो सोचा, किया और सहा वही व्याप्त है, यही कारण है कि हमारी संस्कृति लोक मूला है। ‘लोक’ को देहात या गाँव से ही नहीं जोड़ा जा सकता क्योंकि शहर

में रहने वाला सुसंस्कृत व्यक्ति भी यदि अपनी प्राचीन परंपराओं के प्रति सजग है एवं उनका पालन करता है तो वह भी लोक से जुड़ा है। क्योंकि उसमें सामान्य मनुष्य में व्याप्त परंपराओं की, वेश-भूषा की समानता है।

लोक-जीवन : स्वरूप तत्त्व एवं विविध पक्ष भारतीय संस्कृति लोक मूला है और लोकधारा अनादि एवं अनन्त है। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार— “लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। इसमें भूत और वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक ही राष्ट्र का अमर स्वरूप है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक के कृत्स्न ज्ञान और संपूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। लोक का अध्ययन बुद्धि का कुतूहल नहीं है। लोक संपर्क के बिना सब अधूरे हैं। जो ज्ञान लोक हित के लिए नहीं, वह अधूरा है।” इस प्रकार लोकधारा अनादि है। यदि भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं तो लोक में ही। लोक हमारी सुदीर्घ परंपरा का फल है। इसी बात को इंगित करते हुए श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा है— “भारतीय लोक-जीवन हमारे सुदीर्घ इतिहास का अमृत फल है, जो हमने सोचा, किया और सहा उसका प्रकट रूप हमारा लोक-जीवन है। ‘लोक’ राष्ट्र की अमूल्य निधि है। हमारे इतिहास में जो भी सुन्दर तेजस्वी तत्व है— वह लोक में कहीं ना कहीं सुरक्षित है। हमारी कृषि, अर्थशास्त्र-ज्ञान, साहित्य कला के नाना रूप, भाषाएँ और शब्दों के भण्डार, जीवन के आनन्दमय पर्वोत्सव, नृत्य, संगीत, कथा-वार्ताएँ, आचार-विचार सभी कुछ भारतीय लोक में ओत-प्रोत हैं।”¹⁰ यह ‘लोक’ ही लोक धर्म का चिरप्रवाहमय निर्झर है, जिसके अमृत अभिसिंचन से विविध लोक-कलाओं पर रंग आता है, वे फलती-फूलती हैं। इसी के आधार पर लोक-मानस संवरता निखरता है। आज के मनुष्य के जीवन को आरोपित जीवन कहा जा रहा है, क्योंकि आज के मानव ने मशीनी सभ्यता के साथ मानव-प्रकृति के सुरम्य इन्द्रधनुषी एवं स्वाभाविक वातावरण को छोड़कर कृत्रिमता की ओर अग्रसर हुआ है। वर्तमान में मनुष्य का जीवन एकरस तथा अत्यधिक घुटनशील हो गया है। लोक-जीवन अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक एवं स्वतंत्र है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार—“लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता पाण्डित्य चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है, जो परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं, वे लोक-तत्व कहलाते हैं।”¹¹ डॉ. कुन्दन लाल उप्रेती ने लोक-तत्वों को इंगित करते हुए लिखा है— “लोक-ज्ञान बौद्धिक चेतना, सुसंस्कृत तथा परिष्कृत एवं शिक्षा से हीन एक ऐसा समुदाय है, जो आदिम प्रवृत्तियों तथा परम्पराओं की धारा में बहता हुआ अकृत्रिम जीवन जीने में विश्वास रखता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति जिन तत्वों के माध्यम से होती है, वे लोक-तत्व कहलाते हैं।”¹²

इस प्रकार ‘लोक-तत्व’ के अंतर्गत टोना-टोटका, जप-तप, मंत्र क्रियाएँ, नजर, डिटौना, रीति-रिवाज आदि प्रकार की सभी क्रियाएँ आती हैं जो ग्रामीण निरक्षर एवं असंस्कृत जीवन में पायी जाती है। इस प्रकार लोक में साधारण जनो के जीवन का अथवा उनके जीवन की विशेषताओं का समाहार किया जाता है।

डॉ. हरजोग ‘लोक’ को सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पक्ष से जोड़ते हैं, उनके अनुसार — “लोक से तात्पर्य उस जनसमूह से है, जिसमें नगर की सांस्कृतिक, आर्थिक और शिक्षा मूलक विविधता कम-परिलक्षित होती है। वहाँ जीवनगत विविधताएँ, रीति-नीतियाँ और वार्ताएँ, जिसमें गीत भी सम्मिलित होते हैं, सारे समूह में समान रूप से प्रचलित रहते हैं।” इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि “लोक” हमारे समूहगत संस्कारों से जुड़ा हुआ है। हमारे द्वारा किये गये संस्कारगत क्रियाकलाप यथा- रीतियाँ, रीति-रिवाज तथा जन-संस्कार आदि ‘लोक तत्व’ में आते हैं। अतः मनुष्य के चेतन तथा सामूहिक अचेतन के सम्मिश्रण से निर्मित लोक-मानस का प्रतिनिधित्व लोक शब्द द्वारा होता है।

डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय ने लोक के स्वरूप पर चर्चा करते हुए लिखा है — “सांस्कृतिक प्रवाह के रूप में लोक की स्थिति देखने पर स्पष्ट होता है कि यह शब्द उस मानव समूह का बोध कराता है, जो आदिम समाजों, ग्रामीण समाजों तथा नागरिक समाजों में एक समान रूप से निवास करने वाला कोई भी मानव समूह हो सकता है। इस प्रकार के मानव समूह पर परिष्कृत रुचि वाले व्यक्तियों का अथवा समाज के अभिजात्य वर्ग की विशेषताओं का कम ही प्रभाव पड़ता है।”¹³ अदि कांश विद्वान ‘लोक’ को असभ्य समुदाय से जोड़ते हैं, यह सही है अथवा गलत यह तो इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति चाहे सुसंस्कारित हो अथवा सभ्य समाज में रहने वाला, उसमें व्याप्त जन-रीतियाँ ही उसे लोक से जोड़ती हैं और यह तो निर्विवाद रूप से सत्य है कि व्यक्ति चाहे कितना ही सुसंस्कृत हो, सभ्य हो या ग्रामीण परिवेश से किसी भी प्रकार का संबंध न रखता हो, परंतु प्रायः देखा यह गया है कि वह जन-रीतियों का अंशतः पालन करता है। आज के वैज्ञानिकता एवं आधुनिकता के दौर में भी यही देखा गया है कि हर व्यक्ति कहीं न कहीं लोक-रीतियों से अवश्य ही जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। डॉ. शंकर सेन गुप्ता का कथन भी उपर्युक्त कथन का समर्थन करता प्रतीत होता है, जहाँ वे लिखते हैं— किसी न किसी रूप में हम ‘लोक’ शब्द से संबोधित किये जा सकते हैं, क्योंकि हममें से कोई भी परंपरा विहीन तथा पूर्वजों के द्वारा छोड़े गये मौखिक ज्ञान से वंचित नहीं है। किसी ‘लोक’ समाज में जो लोक

सृजनात्मक प्रतिभा से सम्पन्न होते हैं, उन्हीं को हम 'लोक' कहते हैं। भारतीयों की यही 'लोक' मनोवृत्ति औषधियों के प्रयोग में तथा जादू-टोनों और लोकोपचारों पर उनके विश्वास के रूप में झलकती है। वे लोक देवी-देवताओं पर अटूट विश्वास करते हैं।¹⁴

लोक में किसी प्रकार का बाह्य प्रदर्शन नहीं होता, किसी प्रकार का आडम्बर नहीं होता, अपितु स्वाभाविकता एवं सरलता उसका मूलाधार होता है। 'लोक' सुदीर्घ परंपरा का फल है, जिसमें हमारा भूत, भविष्य और वर्तमान निहित रहता है। यह पैतृक उत्तराधिकार से प्राप्त वह पारंपरिक जीवन है, जो नैसर्गिक सौन्दर्य, माधुर्य, सारल्य त्याग, अध्यात्म, स्वाभाविकता आदि अलंकारों से सुशोभित है। 'लोक' निरन्तर प्रवाहमान एवं गतिशील है। इसमें श्रद्धा और विश्वास की भावना, उत्सव, अनुष्ठान तथा उसके विविध कार्य-कलाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।

संदर्भ सूची

1. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आपटे, पृ. 884
2. ऋग्वेद पुरुष सूक्त 10:90:14
3. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र, पृ. 3
4. सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) संवत् 2010 पृ. 65
5. जनपद पत्रिका, वर्ष 1, अंक 1, पृ. 65
6. लोक-साहित्य का अध्ययन, त्रिलोचन पाण्डेय, पृ. 104
7. The Study of Folklore- Alan Dunds, 1865 P. 2
8. लोक साहित्य का अध्ययन, त्रिलोचन पाण्डेय, पृ. 42
9. लोक-साहित्य का अध्ययन, त्रिलोचन पाण्डेय, पृ. 45
10. सम्मेलन पत्रिका, लोक-संस्कृति अंक (संवत् 2010) पृ. 65
11. लोक-साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र पृ. 3
12. लोक-साहित्य के प्रतिमान, डॉ. कुन्दन लाल उप्रेती, पृ. 6
13. लोक साहित्य का अध्ययन, डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय, पृ. 109
14. Folk Lore, Monthly September 1974, Vol. 16, P. 299